'बिना दीवारों के घर' में अभिव्यंजित स्त्री मन का अनुशीलन

- डॉ.नागरत्ना एन राव
एसोसिएट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
मंगलौर विश्वविद्यालय
Email:hindiratna@gmail.com

डॉ.नागरत्ना एन राव, 'बिना दीवारों के घर' में अभिव्यंजित स्त्री मन का अनुशीलन, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 1/अंक 1/सितंबर 2021,(3-9)

"औरत कहाँ नहीं रोती? सड़क पर झाड़ू मारते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ़ करते हुए ---- हाड़मांस की बनी ये औरतें अपने-अपने तरीके से ज़िन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें, हज़ारों सालों से इनके आंसू बहते आ रहे हैं, "१ प्रसिद्ध कथाकार प्रभा खेतान के ये शब्द स्त्री मन की व्यथा को बड़ी मार्मिकता से अभिव्यक्ति देते है। स्त्री जीवन की इस अनकही कथा का अनावरण अत्यंत आवश्यक है।

समाज में स्त्री का स्वरुप

"मानव-समाज" को संस्कारों से अभिभूत करने वाली स्त्री सदा ही समाज में प्रचलित रूढ़ियों, कुप्रथाओं, विसंगतियों और मान्यताओं से सदा ही पददलित एवं प्रताड़ित रही है। उसकी परिस्थितियों ने उसे निराश किया जिसके कारण वह अपने परिवार के हित के लिए घुट-घुट कर जीती रही। मानव जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि एक परिवार का अस्तित्व "स्त्री" से है लेकिन उस परिवार में स्त्री की कोई अस्मिता नहीं। शायद इसीलिए किसी ने ठीक ही कहा है - "स्त्री का कोई घर नहीं होता पर स्त्री के बिना भी कोई घर नहीं होता।" एक परिवार को बनाने और मिटाने में स्त्री की अभूतपूर्व भूमिका रही पर कभी किसी ने उसकी अनुभूति, मानसिक स्थिति को समझना ज़रूरी नहीं समझा और न ही प्रयास किया।

एक परिवार के सुचारू रूप से परिचालित होने के लिए "स्त्री" की अहम् भूमिका होती है पर इस सत्य को कोई भी आसानी से स्वीकार नहीं करता। लेकिन जब भी किसी परिवार में कोई विवाद या वैषम्य आता है तो इसके लिए तुरंत ही उस घर की स्त्री को आरोपित किया जाता है। स्त्री जीवन की इस

अस्थिर मानसिकता ने उसे भीतर से कुंठित कर दिया है। जिस माँ ने अपनी संतान को संस्कारों से पोषित किया उसी परिवार में माँ पत्नी और बहू का अनादर होता है। फिर भी उसने अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं को हाशिये पर रख अपने परिवार के हित का ही सोचा। एक स्त्री के लिए उसका परिवार ही संसार और सर्वस्व है जिसके लिए वह अपने अस्तित्व को भी दाव पर लगा देती है। ऐसे में जब उसका पति, जो उसका जीवन साथी है और जिसके लिए वह अपनों को छोड़ आयी है, वह उसकी उपेक्षा करे तो वह कहाँ जाए? इसलिए कभी-कभी ऐसा लगता है कि स्त्रियाँ पुरुष के सहयोग के बिना क्यों अपने आपको इतना असहाय मान बैठी हैं? जबकि पुरुष या कोई भी परिवार घर की स्त्री के बिना कुछ नहीं। वैसे तो मानव ने समाज की निर्मिति व्यवस्थित जीवन जीने के लिए की। लेकिन सदियों से इस समाज की सोच, परम्पराओं, मान्यताओं ने व्यक्ति का हित करने के बजाय उसका अहित ही किया है। पुरुष सत्तात्मक सामाजिक सोच ने स्त्री को कभी एक "व्यक्ति " के रूप में देखा ही नहीं। एक व्यक्ति पर उसका स्त्री होना इतना हावी हो जाता है कि अंततः वह केवल एक शरीर मात्र बनकर रह जाती है। जिसका बाह्य सौंदर्य मान्य और महत्वपूर्ण है पर उसका मन सदा ही उपेक्षित तथा तिरस्कृत। सब जानते हुए भी कभी स्त्री ने विरोध या प्रतिरोध नहीं किया। उसने तो कभी अपने लिए जीना सीखा ही नहीं। वह तो सदा दूसरों के लिए ही जीती आयी है। विवाह से पूर्व माता पिता के लिए तो विवाह के पश्चात पति के लिए। उसने तो कभी अपने बारे में सोचा ही नहीं। विडम्बना यह है कि परिवार के सभी सदस्यों के बारे में ख्याल रखने वाली के बारे कोई नहीं सोचता। ऐसा लगता है मानो स्त्री जन्म से ही आत्मसमर्पण, आत्मवंचना, आत्मदमन के संस्कारों से ही गढी गयी हो। ऐसी समर्पित स्त्री को ही "आदर्श स्त्री" माना जाता है और अपेक्षा की जाती है कि वह हर स्थिति में मौन रहे। उसका मन चाहे किसी बात से हताहत हो जाए पर वह किसी को आहत न करे।

"बिना दीवारों के घर" में अभिव्यक्त स्त्री की मनोदशा

स्त्री की इसी संवेदनशीलता, सहृदयता और समर्पण की भावना ने उसके मन को सदा ठेस पहुंचाई है। मन्नू भंडारी कृत नाटक "बिना दीवारों के घर " शोभा की ऐसी ही हृदयद्रावक कहानी है, जिसे कदम-कदम पर उसे अपने पति के "अहम् " शिकार होना पड़ता है। पुरुष रुपी पति सदा अपनी स्त्री रुपी पत्नी को अपने से ऊँचा उठता नहीं देख सकता। वह सदा अपना पलड़ा भारी ही रखना चाहता है। जैसे ही उसे पता चलता है कि उसकी पत्नी किसी भी दृष्टि से उससे आगे है तो वह तिलमिला उठता है। उसकी इसी प्रवृत्ति के कारण शायद हमारे समाज में यह परंपरा चली कि आयु, शिक्षा, पद, संपत्ति, बुद्धि, क्षमता आदि में पत्नी का स्तर पति से कम हो । पुरुषों को भी अपने परिवार में यही संस्कार मिले। तभी कोई

पुरुष यह सहन नहीं कर पाता कि उसकी पत्नी किसी भी आयाम से उससे बड़ी हो फिर चाहे उसका कद ही क्यों न हो ? यदि भूले से कभी स्त्री सफल हो गयी तो पुरुष अपने अहम् की पुष्टि के लिए स्त्री का अपमान करता है। उसकी सफलता पर प्रश्नचिन्ह लगा देता है। इसी से वह अपने अहम् को तुष्ट करता है। इस सन्दर्भ में डॉ जगदीश चतुर्वेदी जी का अभिमत सटीक लगता है " पुरुष अपनी अस्मिता का स्वयं निर्माता था किन्तु स्त्री को यह हक़ नहीं था। स्त्री ने जब अपने हकों की मांग की तो पुरुष निर्मित ढाँचे नियमों ,मूल्यों एवं रिवाज़ों से विचलन हो बदचलनी का रूप दे दिया। 2 शोभा ने जब अजित से शादी की थी तब वह केवल दसवीं पास थी। अपने पति से प्रेरित होकर बड़ी लगन से उसने एम् ए कर लिया। अजित एक भारतीय कंपनी में कार्यरत था। जब तक शोभा उसकी बात मान कर उसके अनुकूल घर संभालती रही तब तक वह खुश था। उनकी एक बेटी भी थी अप्पी । छोटा परिवार, सुखी परिवार था। लेकिन जैसे ही शोभा को कॉलेज में प्राध्यापिका की नौकरी मिली तब से घर का संतुलन बिगड़ने लगा। अजित को बड़ा अहंकार था कि अरे, वह तो है ही अजित नौकरी मिली तब से घर का संतुलन बिगड़ने लगा। अजित को बड़ा अहंकार था कि "अरे, वह तो है ही अजित मेड।"3 अजित की इन बातों में अभिमान कम और अहंकार ज्यादा था। वह सदा इसी भ्रम में रहा कि उसी ने शोभा को उच्च शिक्षा दी। यह सही है पर शोभा की इच्छा और परिश्रम के बिना भी तो यह संभव नहीं था। फिर शोभा की कार्यक्षमता को परखते हुए उसके समक्ष प्रिंसिपल बनने का प्रस्ताव आया। सच्चे और सकारात्मक मन से किया गया शोभा का प्रयत्न फलीभूत हुआ पर अहंकारी अजित को यह मंजूर न था। जब एक आदर्श पत्नी की तरह शोभा ने अजित से इस पद को संभालने के बारे में पूछा तो उसकी नकारात्मक प्रतिक्रिया सुन वह हताश हो गयी। अजित ने शोभा से कहा-"मैं तुमसे ज्यादा तुमको, तुम्हारी योग्यता और तुम्हारी सीमाओं को समझता हूँ। एक घर तो तुम ठीक तरह चला नहीं सकती, कॉलेज चला लोगी ?" 4 अजित का शोभा के सामर्थ्य के प्रति संदेह उस पुरुष अहम्की तुष्टि ही है। वह ये मानाने को तैयार नहीं कि जिस पत्नी को उसने पढ़ाया क्या वह प्रिंसिपल बनने योग्य हो गयी? पुरुष अपनी पत्नी स्पर्धी के बजाय साथी मान लेता तो कोई समस्या ही नहीं होती। अजित ने अपने आपको सर्वेसर्वा मान लिया था इसलिए वह अपनी पत्नी की सफलता से नाखुश था। उस पर संदेह व्यक्त कर रहा था क्योकि वह उसको अपने से आगे बढ़ते नहीं देख सकता था। उसकी नौकरी में अब तक बढ़ोत्तरी नहीं हो पायी थी। पुरुष अपने पुरुषार्थ सिद्धि हेतु स्त्री को अपने चरणों पर ही रखना पसंद करता है। अजित की यही तमन्ना थी कि शोभा यदि कुछ करे तो उससे पूछकर ही। अगर उसे पसंद न हो तो नहीं। पुरुष यह भूल जाता है कि वह स्त्री उसकी पत्नी होने से पूर्व एक व्यक्ति है। उसकी अपनी इच्छाएं, आकांक्षाएं हैं। समाज में वह भी अपनी एक पहचान बनाना

चाहती है। शोभा ने देखा कि अब अजित से कोई समर्थन नहीं मिला तो वह अजित की इच्छा के विरुद्ध जाकर प्रिंसिपल का पद संभालती है। जिस समाज में रहकर उसने शिक्षा ग्रहण किया वह उसकी सेवा करना चाहती है। सारी कुंठाओं को त्याग उसने अपने मन की बात सुनी। इससे अजित के अहम् को चोट पहुंची। वह भीतर से तिलमिला उठा इसलिए शोभा को अपमानित करने का एक भी मौका नहीं छोड़ा। शोभा भी अंदर से टूटती जा रही थी। जिस ज़मीन ने उसके भीतर के बीज को अंकुरित कर सींचा था आज उसे वही जमीन अपने पैरों तले धंसती नज़र आने लगी। लेकिन वह हिम्मत नहीं हारती। रोज़ की अनबन से छुटकारा पाने का उसे एक रास्ता मिला। शोभा जानती थी कि अजित उसकी पदोन्नति से परेशान है। उसकी फितरत तो नहीं बदली जा सकती पर अपनी परिस्थिति अवश्य बदली जा सकती थी। शोभा को एक उपाय मिला। वह अजित के मित्र जयंत से सहायता लेती है। उसके द्वारा अपने हीनता ग्रंथि से ग्रस्त पति के लिए एक अंग्रेजी कंपनी में अच्छी नौकरी ढूंढती है। जब अजित को इस बात का पता चलता है तो वह अपनी पत्नी के चरित्र पर शक करता है। परन्तु अजित का मित्र जयंत भी एक पुरुष है पर वह शोभा की परेशानी समझता है। वह अजित के बारे में शोभा से कहता है- वह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि तुम्हारी भी अपनी कोई जगह हो, प्रतिष्ठा हो। वह तुम्हे मिसेज अजित की तरह देखना चाहता है। श्रीमती शोभा देवी के रूप में नहीं।"5 सदियों से पत्नी के अस्तित्व पर पति का अस्तित्व हावी होता आया है। शोभा के साथ ही वही हुआ। फिर भी वह अजित की सभी बातों को अनसुना कर अपने परिवार के लिए शांत रहकर उसके लिए नौकरी ढूंढ ही लेती है। अब अजित की शोभा से कोई स्पर्धा नहीं। वह खुश है। वैसे तो दो बातें कही जाती हैं एक स्त्री ही दूसरी स्त्री के मन को समझती है। कहीं-कहीं यह अपवाद भी होता है जैसे शोभा के साथ होता है। अजित की तरक्की की खुशी में शोभा अपने घर में एक पार्टी का आयोजन करती है। वहां श्रीमती शुक्ला स्त्री सुलभ ईर्ष्यावश शोभा की सफलता पर व्यंग्य करती है;आजकल जिसे औरत की हिम्मत कहते हैं, उसी की बात कह रही थी औरत ज़रा सा अपने को ढीला छोड़ दे तो कहाँ जा सकती है। औरतें क्या आजकल तो आदमी भी अपनी बीवियों के बूते पर तरक्की करना बुरा नहीं समझते। "6 उसे अजित और शोभा की 3 सुलह पसंद नहीं इसलिए वह दोनों की सफलता पर एक साथ वार करती है। दूसरी बात स्त्री ही स्त्री की शत्रु है यह सही भी है। ये दोनों बातें श्रीमती शुक्ला के व्यक्तित्व को प्रदर्शित करते हैं। स्त्री मन की ईर्ष्यापूर्ण बातें सुन अजित का पुरुष अहम् भी उत्तेजित हुआ। इसी संदर्भ में वह भी शोभा को बहुत कुछ सुना देता है। तब वह निरुपाय होकर घर छोड़ने का निर्णय लेती है। आज तक स्त्री के साथ अन्याय इसलिए हुआ क्योंकि उसने कभी प्रतिरोध नहीं किया। स्त्री, सदा ही परिवार के किसी न किसी रिश्ते से जस्डी होती है इसलिए इतनी आसानी से अपने आपको काट नहीं पाती। मानव समाज में

सही मायने में एक स्त्री ने ही मानवीय रिश्तों को परिभाषित किया है। अतः जो रिश्तों को बना सकती है, वह उन्हें तोड़ने में भी सक्षम हो सकती है। एक पुरुष की भाँति स्त्री कभी केवल अपने बारे में नहीं सोचतीं। लेकिन जिस दिन स्त्रियों ने अपने बारे में सोचना शुरू कर दिया तो उस दिन मानव समाज के सभी रिश्ते दाव पर लग जायेंगे। इस नाटक में भी शोभा अपने पति की उपेक्षा से पीड़ित होकर घर छोड़ कर जा सकती थी जबकि अब वह आत्मनिर्भर भी थी। परन्तु वह अजित की आर्थिक दुर्दशा के कारण जा नहीं पायी थी। इस सम्बन्ध में वह अपनी जीजी से कहती भी है, "यदि वे बेकार नहीं होते तो कभी की घर छोड़कर चली जाती। कौन रह सकता है ऐसे शक्की आदमी के साथ।"7 अजित की अच्छी नौकरी लगने के बाद वह अपना घर छोड़कर चली जाती है। एक स्त्री का अपमान करने वाले यह क्यों भूल जाते हैं कि वह किसी की पुत्री या पत्नी होने से पूर्व एक मानव है। उसकी सहनशक्ति की भी एक सीमा है। शोभा के घर से जाने के बाद उसकी बेटी अप्पी बीमार पड़ जाती है। यह खबर मिलते ही वह अपनी बेटी से मिलने आ जाती है। लेकिन अजित उसे रुकने के लिए नहीं कहता शोभा अप्पी को अपने साथ ले जाना चाहती है पर अजित उसे ऐसा करने से मना कर देता है। तब शोभा पूरे आत्मविश्वास से परिपूर्ण हो अजित से कहती है –"मैं अकेली चलीजाउंगी। जहाँ मैंने अपने भीतर की पत्नी को मारा है, वहीं अपने भीतर की माँ को भी मार दूंगी।"8 यही है स्त्री मन का धैर्य। यदि वह ठान ले तो उसके लिए कुछ भी नामुमकिन नहीं। अजित जैसे आत्मकेंद्रित पुरुषों ने शोभा जैसी उदार स्त्रियों को अकेलेपन की ज़िन्दगी दी है। अब उन दोनों के अलग हो जाने के बाद उनके बीच की हर दीवार गिर जाती है। अब अजित बिना दीवारों के घर में रह रहा है।"दीवारें" किसी भी घर का आधार होती हैं, जो उस घर की छत को संभालती हैं। हर परिस्थिति में एक स्त्री को ही अपना घर छोड़ना पड़ता है। क्यों हर बार स्त्री से ही अपेक्षा की जाती है ? यह अलग बात है कि स्त्री अपनों के हित के लिए कुछ भी करने को तैयार होती है। यह तो उसका सहज गुण है। उसका जन्म ही दूसरों के लिए हुआ है। इसीलिए शायद किसी ने ठीक ही कहा है; स्त्री का अपना कोई घर नहीं होता।" लेकिन सच्चाई यह है कि स्त्री के बिना कोई घर नहीं होता। इस बात को जानते हुए भी कोई मानता क्यों नहीं? क्यों हर बार उसे ही अपमानित होना पड़ता है। जबकि बात केवल एक स्त्री के मन को स्त्री के रूप में नहीं बल्कि एक व्यक्ति के रूप में समझने की है। वह न किसी को अपना दासबनाना चाहती है और न किसी की दासी बनना पसंद करती है। वह तो पुरुष की सहगामिनी है।एक पुरुष अपनी माँ बहन, बेटी को तो बड़े आदर और सम्मान देता है पर अपनी ही पत्नी को क्यों इतना निकृष्ट मानता है ? पत्नी ही एक बेटी को जन्म देती है और माँ बनती है। स्त्री मन की इस व्यथा को न समझ पाने के कारण आज तक कितनी स्त्रियां टूटी हैं और खंडित हुई हैं। इस रचना के माध्यम से रचनाकार ने इसी

तथ्य पर प्रकाश डाला है। इसलिए नाटककार ने अपने मन की बात शोभा से इस प्रकार कहलवाया है। वह अजित से कहती है-आपको घर का इतना ख्याल है जीजी का ख्याल है अपनी और अप्पी का ख़याल है, पर मेरा भी कभी ख्याल किया है आपने कभी मेरी भावनाओं को समझने की कोशिश की है? मेरी अपनी भी कुछ आकांक्षाएं हैं, अपने जीवन के स्वप्न हैं। इस घर के परे भी मेरा अपना कोई अस्तित्व है।"10 स्त्री को पुरुष ने सदा ही कमज़ोर समझा है। इसलिए स्त्री यदि अपनी परिस्थितियों से थककर पुरुष के सम्मुख याचना करेगी तो वह कभी नहीं समझेगा। स्त्री को अपने अस्तित्व की लड़ाई स्वयं लड़नी होगी। न्यायोचित व्यवहार के लिए पुरुष से अपेक्षा रखने के बजाय स्त्री को आत्मनिर्भर बनना होगा। तभी वह शोभा की तरह एक तटस्थ निर्णय लेकर जी सकती है। वर्तमान युग नारी स्वातंत्र्य का युग है, जहाँ वह सक्षम होकर अपने अस्तित्व और अस्मिता को सिद्ध कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

१) छिन्नमस्ता प्रभा खेतान, पृ ५४

२) स्त्रीवादी साहित्य विमर्श जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृ २१

३) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ३४

४) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ३७

५) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ४७

६) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ७४

७) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ८४

८) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ९९

९) बिना दीवारों के घर मन्नू भंडारी, पृ ४५

साहित्य एवं मनोविज्ञान का अंतर्संबंध

डॉ. रेनू यादव

फेकल्टी असोसिएट

भारतीय भाषा एवं साहित्य विभाग (हिन्दी),

गौतम बुद्ध विश्वविद्यालय, यमुना एक्सप्रेस-वे,
ग्रेटर नोएडा. पिन – 201312 (उ.प्र.)
फोन – 09810703368
ई-मेल –**renuyadav0584@gmail.com**